शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

श्रावण : २४८१ ☆ वर्ष ग्यारहवाँ ☆ अंक चौथा

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

आचार्य भगवान कहते हैं कि

अरे जीव! क्षणिक रागादि पर्याय जितना ही तू नहीं है; तेरा भूतार्थस्वभाव परिपूर्ण सामर्थ्य का पिण्ड है, वह अशुद्ध नहीं हो गया है; इसलिये उस भूतार्थस्वभाव की ओर उन्मुख होकर तू आत्मा के शुद्ध स्वभाव की प्रतीति कर।

हे भाई! पर्याय में विकार देखकर तू अकुला मत, क्योंकि तेरा आत्मा उस विकार जितना नहीं है; तेरा पूर्ण स्वभाव विकाररूप नहीं हो गया है; तेरा द्रव्यस्वभाव तो एकरूप शुद्ध है; उस स्वभाव की ओर उन्मुख होकर अनुभव करने से विकाररहित शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। अन्तरदृष्टि से ऐसा अनुभव करना, वह एक ही कल्याण का मार्ग है।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

१२४

एक अंक
चार आना

जैन स्वाध्याय मन्दिर : सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मा का प्रयत्न

शास्त्र कहते हैं कि आत्मा का प्रयत्न पर में काम नहीं आता; लेकिन उसका यह मतलब नहीं है कि अपना सम्यग्दर्शन भी बिना प्रयत्न के हो जाता है। अज्ञानी जीव विपरीत समझते हैं। जिसे आत्मा का हित करना हो, उसे अपने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को जानने का उद्यम करना चाहिए और उस जान लेने के पश्चात् उसमें एकाग्रता का उद्यम करना चाहिए। इसी उपाय से अहित दूर होकर हित होता है। आत्मा के अंतरंग प्रयत्न के बिना कभी भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। जिस प्रकार पर में आत्मा का प्रयत्न नहीं है, उसी प्रकार अपने सम्यग्दर्शन में भी आत्मा का प्रयत्न नहीं है—ऐसा जो मानता है, उसने वास्तव में आत्मा को नहीं जाना है, और न उसे भगवान के उपदेश की खबर है। ''सर्वज्ञदेव ने देखा है, तभी सम्यग्दर्शन होगा''—ऐसा कहे तो उसमें भी सर्वज्ञ के निर्णय का प्रयत्न आ जाता है; और सर्वज्ञ का यथार्थ निर्णय करने से उसमें अपने ज्ञानस्वभाव के निर्णय का प्रयत्न साथ आ ही जाता है। आत्मा की उल्टी या सीधी एक भी पर्याय अपने उस-उस प्रकार के प्रयत्न बिना नहीं होती; प्रत्येक पर्याय में पुरुषार्थ का परिणमन भी साथ है।

(— पूज्य गुरुदेव)

आत्मधर्म

अषाढ़ : २४८१ ☆ वर्ष ग्यारहवाँ ☆ अंक तीसरा

आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त होता है ?

लेखांक १६] [अंक ११४ से आगे

श्री प्रवचनसार के परिशिष्ट में आचार्यदेव ने ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उस पर पूज्य गुरुदेव के विशिष्ट अपूर्व प्रवचनों का सार।

* जिज्ञासु शिष्य पूछता है कि—''प्रभो! आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त होता है ?''

* श्री आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि—''आत्मा अनंत धर्मोंवाला एक द्रव्य है और वह अनंत नयात्मक श्रुतज्ञान प्रमाणपूर्वक स्वानुभव द्वारा ज्ञात होता है।''

* उस आत्मद्रव्य का ४७ नयों से वर्णन किया है; उसमें से निम्नानुसार २७ नयों के प्रवचन आत्मधर्म अंक ११४ तक आ गये हैं।

(१-२) द्रव्यनय, पर्यायनय, (३ से ९) अस्तित्वनय, नास्तित्वनय इत्यादि सप्तभंग, (१०-११) विकल्पनय, अविकल्पनय (१२ से १५) नामनय, स्थापनानय, द्रव्यनय, भावनय (१६-१७) सामान्यनय, विशेषनय, (१८-१९) नित्यनय, अनित्यनय (२०-२१) सर्वगतनय, असर्वगतनय, (२२-२३) शून्यनय, अशून्यनय (२४-२५) ज्ञानज्ञेय-अद्वैतन्य, ज्ञानज्ञेयद्वैतनय (२६-२७) नियतिनय, अनियतिनय;

अब निम्नानुसार २० नयों के प्रवचन बाकी हैं—

(२८-२९) स्वभावनय, अस्वभावनय, (३०-३१) कालनय, अकालनय, (३२-३३) पुरुषकारनय, दैवनय, (३४-३५) ईश्वरनय, अनीश्वरनय, (३६-३७) गुणीनय, अगुणीनय,

(३८-३९) कर्तृनय, अकर्तृनय (४०-४१) भोक्तृनय, अभोक्तृनय, (४२-४३) क्रियानय, ज्ञाननय, (४४-४५) व्यवहारनय, निश्चयनय, (४६-४७) अशुद्धनय और शुद्धनय।

इस प्रकार ४७ नयों से आत्मा का वर्णन करके अन्त में आचार्यभगवान उसका तात्पर्य बतलाते हुए कहते हैं कि—''इस प्रकार स्यात्कारी श्री के वास के वश वर्तते हुए नय समूहों द्वारा देखे तो भी और प्रमाण द्वारा देखे तो भी स्पष्ट अनन्त धर्मोंवाले निजात्मद्रव्य को अन्तर में शुद्ध चैतन्यमात्र देखता ही है।'' शुद्ध चैतन्यद्रव्य पर दृष्टि जाये, यही इन सर्व नयों का परमार्थ तात्पर्य है; क्योंकि आत्मा के जितने धर्म हैं, वे सब शुद्ध चैतन्यद्रव्य के आश्रय से ही अभेदरूप से स्थित हैं। इसलिये सर्व नयों के वर्णन में यह बात लक्ष में रखना चाहिये।

[२८] स्वभावनय से आत्मा का वर्णन

आत्मद्रव्य स्वभावनय से संस्कार को निरर्थक करनेवाला है। जिस प्रकार तीक्ष्ण कंटक स्वभाव से ही नोंकवाला है; उसकी किसी से नोंक नहीं निकाली जाती; उसी प्रकार आत्मा का जो एकरूप स्वभाव है, उसमें संस्कार निरपयोगी है। स्वभावनय से देखने पर आत्मा का जो स्वभाव है, उसमें किसी के संस्कार नहीं पड़ते। संस्कार तो क्षणिक पर्याय में कार्य कर सकते हैं; ध्रुवस्वभाव तो एकरूप है, उसमें संस्कार क्या करेंगे? जिस प्रकार भव्य जीव का भव्य स्वभाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करने की योग्यतारूप है; उस भव्य जीव ने अनादिकाल से पर्याय में चाहे जितना अधर्म किया है; महाकषाय और पापभाव किये हैं, तथापि उसका भव्य स्वभाव बदल नहीं जाता, इसलिये पर्याय के जो संस्कार हैं, वे स्वभाव में नहीं पड़ते। इसप्रकार स्वभाव में संस्कार निरर्थक हैं। पर्याय में महाकषाय हिंसादि के संस्कार हैं, किन्तु संस्कार कहीं ध्रुव स्वभाव में फेरफार नहीं कर सकते; ध्रुव स्वभाव में पाप के संस्कार पड़कर, भव्य का स्वभाव बदलकर वह अभव्य हो जाये—ऐसा कभी नहीं हो सकता। तीव्र पाप करने से भव्य में से अभव्य हो जाये—ऐसा भी नहीं हो सकता; और व्रत तपादि के महान शुभभाव करने से अभव्य का स्वभाव बदलकर वह भव्य हो जाये—ऐसा भी नहीं होता। इस प्रकार जिसका जो स्वभाव है, वह बदल नहीं सकता; यानी स्वभाव में संस्कार काम नहीं कर सकते। ''अनादि से निगोद में भटका और पर्याय में महान अशुद्धता की, उसके संस्कार आत्मा में पड़ गये हैं, इसलिये अब कभी अशुद्धता दूर करके उसकी शुद्धता नहीं हो सकेगी''—ऐसा नहीं है; क्योंकि पर्याय के संस्कार द्रव्यस्वभाव में नहीं पड़ गये हैं।

पर्याय में अनादि से अशुद्धता की है, तथापि द्रव्यस्वभाव ज्यों का त्यों शुद्ध है; उसका अवलंबन करते ही पर्याय में से अशुद्धता के संस्कार दूर होकर शुद्धता के संस्कार प्रगट होते हैं।

आत्मा का स्वभाव ऐसा है कि वह क्षणिक पर्याय के संस्कार को निरर्थक कर देता है, पर्याय के विकार को स्वभाव में प्रविष्ट नहीं होने देता। अनादि से पर्याय में चाहे जितने विकार भाव किये, किन्तु वे भाव ध्रुव चैतन्यस्वभाव को बदल देने में समर्थ नहीं है; ध्रुवस्वभाव को अशुद्ध कर देने की शक्ति उनमें नहीं है। कोई जीव अनेक पाप करे तो उसका चैतन्यस्वभाव मिटकर वह जड़ हो जाये—ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा का स्वभाव, संस्कार को निरर्थक कर देता है।

जहाँ ऐसे स्वभाव का भान हुआ, वहाँ पर्याय में भी पूर्वकालीन अधर्म के संस्कार टलकर अपूर्व धर्म के संस्कार प्रगट हुए। अहो! मेरा आत्मा पर्याय के विकार के संस्कार को निरर्थक कर डाले, ऐसे स्वभाववाला है; पर्याय के संस्कार मेरे स्वभाव को बिगाड़ नहीं सकते—मेरे स्वभाव में विकार प्रविष्ट ही नहीं हुआ है—इस प्रकार जहाँ स्वभाव की खबर पड़ी, वहाँ पूर्वकाल में जितने अधर्मभाव किये थे, उनके संस्कार निरर्थक हो गये।

जिस प्रकार तीक्ष्ण कटक स्वभाव से ही नोकदार है; किसी ने उसे संस्कार देकर नोक नहीं निकाली है; उसी प्रकार भगवान आत्मा स्वभाव से ही अनादि-अनन्त टंकोत्कीर्ण ज्ञानमूर्ति है; उसमें किसी से संस्कार नहीं पड़ते। इसलिये हे भाई! तू क्षणिक विकार से आकुलित मत हो, किन्तु आत्मा के स्वभाव को देख; तेरा स्वभाव त्रिकाल ज्यों का त्यों सिद्धस्वरूपी भगवान है। जहाँ पर्याय ने अन्तर में देखा, वहाँ पूर्वकालीन संस्कारों को निरर्थक जाना और विकार के साथ की एकत्वबुद्धि छूट गई।

पर्याय में विकार हो, उससे कोई कहीं आत्मा के स्वभाव का घात नहीं हो जाता; किन्तु इससे ऐसा कहे कि—"पर्याय का विकार, स्वभाव में हानि नहीं करता; इसलिये चाहे जैसा विकार करने में कोई हानि नहीं है"—तो ऐसा कहनेवाले की दृष्टि एकदम विपरीत है; वह इस बात को समझा ही नहीं है। जो यह बात समझले, उसे तो स्वभावदृष्टि हो जाती है; इसलिये उसकी पर्याय में भी तीव्र विकार तो होता ही नहीं। "पर्याय का विकार, स्वभाव में हानि नहीं करता"—ऐसा कहनेवाला किसके समक्ष देखकर यह कहता है?—स्वभाव की ओर देखकर कहता है;—जिसकी दृष्टि स्वभावसन्मुख होती है, उसे विकार की भावना होती ही नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि हे भाई! पूर्वकाल में विकार हो गया, उससे तुझे अकुलाने की आवश्यकता नहीं है; उस विकार ने तेरे परिपूर्ण आत्मस्वभाव को विकारी नहीं बना दिया है। "अरे

रे! मैंने अनेक पाप किये, अब मेरा क्या होगा?''—इस प्रकार अकुला मत! पाप कहाँ किये हैं; मात्र एक समय की पर्याय में वे पाप हुए हैं; तेरे ध्रुव चैतन्यस्वभाव में वे तो पाप हुए ही नहीं हैं; उस एक समय की पर्याय के संस्कार को तेरा स्वभाव निरर्थक बना देता है, इसलिये उस स्वभाव के सन्मुख देख। जिसका स्वभाव अल्पकाल में मोक्ष जाने का है, उसे पूर्वकालीन अधर्मभाव नहीं रोक सकते। जिसमें से परमात्मदशा प्रगट हो, ऐसा स्वभाव आत्मा में त्रिकाल है। चिदानन्द भगवान ज्यों का त्यों चैतन्यमूर्ति है, उसके स्वभाव को नया नहीं बनाना पड़ता। जिस प्रकार मोर स्वभाव से ही रंगबिरंगा चित्रित होता है, उसे चित्रित किया नहीं जाता; उसी प्रकार अन्य किसी संस्कार से उस स्वभाव को अन्यथा नहीं किया जा सकता। उस स्वभाव के आश्रय से सम्यक् पुरुषार्थ करने से पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र या सिद्धपद प्रगट हो, तो भी उस स्वभाव में से कुछ कम नहीं हो जाता; स्वभावनय से वह ज्यों का त्यों त्रिकाल एकरूप है।

देखो, एक जीव को पर्याय में अल्प सामर्थ्य व्यक्त हुआ है, उस समय शक्ति में उसके अधिक सामर्थ्य बाकी रहा है, और फिर जब पर्याय में अधिक सामर्थ्य व्यक्त हुआ, तब शक्ति में उसे कम सामर्थ्य बाकी रहा है—ऐसा होता होगा!—नहीं; पर्याय में अल्प निर्मलता हो या अधिक हो, किन्तु शक्तिरूप स्वभाव तो ज्यों का त्यों ही परिपूर्ण रहता है; उसमें कहीं हीनाधिकता नहीं होती। इस प्रकार संस्कार को निरर्थक कर डाले, ऐसा आत्मा का स्वभाव है। निगोद पर्याय या सिद्ध पर्याय, अज्ञान पर्याय या केवलज्ञान पर्याय—उस प्रत्येक समय ध्रुव स्वभाव ज्यों का त्यों ही विद्यमान है, उस स्वभाव का नाश नहीं हो गया है और न उसमें किंचित् हानि हुई है। इसलिये ''अरे रे! अभी तक हमने पाप किये हैं, अब हमारा क्या होगा?''—इस प्रकार आकुलित होना नहीं रहा; क्योंकि स्वभाव में वे संस्कार प्रविष्ट नहीं हो गये हैं। जहाँ दृष्टि बदलकर स्वभाव पर दृष्टि की, वहाँ पाप के संस्कार नहीं रहते। एक समय में पर्याय बदलकर स्वभावदृष्टि से सम्यग्दर्शन हो सकता है। ध्रुव स्वभाव की बड़ी ओट है; वह स्वभाव सभी विकार के संस्कारों को निरर्थक कर देता है। इसलिये हे भाई! तू अपने ऐसे ध्रुवस्वभाव की रुचि और उसी का अवलम्बन कर। मैं भगवान सिद्ध परमात्मा जैसा नित्यानन्द अशरीरी शुद्ध चैतन्यमूर्ति सदैव ज्यों का त्यों हूँ; मेरा स्वभाव किंचित् न्यून नहीं हुआ है;—इस प्रकार जो सहज एकरूप स्वभाव को जानकर उसका अवलम्बन करे, उसी के वास्तविकरूप से स्वभावनय होता है।

(यहाँ २८ वें स्वभावनय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।)

[२९] अस्वभावनय से आत्मा का वर्णन

अब अस्वभावनय से आत्मा कैसा है ? वह कहते हैं:—''आत्मद्रव्य अस्वभावनय से संस्कार को सार्थक करनेवाला है।'' जिस प्रकार तीर के स्वभाव से नोक नहीं होती, किन्तु संस्कार करके लुहार द्वारा नोंक बनाई जाती है; उसी प्रकार अस्वभावनय से आत्मा को संस्कार उपयोगी है अर्थात् उसकी पर्याय में नये संस्कार पड़ते हैं। देखो, पर्याय में अनादिकालीन मिथ्यात्व है, इसलिये वह बदलकर अब सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकेगा—ऐसा नहीं है, किन्तु सच्ची रुचि के संस्कार द्वारा अनादिकालीन अज्ञान दूर होकर एक क्षण में सम्यग्ज्ञान हो सकता है। अनादिकाल के विपरीत भावों के संस्कार दूर करके वर्तमान पर्याय में सच्चे भाव हो सकते हैं;—इस प्रकार आत्मा संस्कार को सार्थक करनेवाला है।

आत्मा में पूर्णानन्द परमात्मस्वभाव भरा है, किन्तु अवस्था में उस स्वभाव को कभी नहीं माना और अपने को तुच्छ पामर माना है; वह विपरीत मान्यता छोड़कर पूर्णानन्दस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान द्वारा तेरी पर्याय में एक क्षण में परमात्मपने के संस्कार हो सकते हैं; इसलिये हे भाई! ''मैं पामर हूँ, मैं पापी हूँ''—ऐसी तुच्छ मान्यता के संस्कार निकाल दे, और ''मेरा आत्मा ही परमात्मा है''—इस प्रकार अपने स्वभाव-सामर्थ्य की श्रद्धा करके स्वभाव के अपूर्व संस्कार प्रगट कर। देखो, यह आत्मा के संस्कार! लोग कहते हैं कि अच्छे संस्कार डालना चाहिये; तो आत्मा में अच्छे संस्कार कैसे डाले जायें, उसकी यह बात है। भाई! पर के संस्कार तुझमें नहीं हैं; ''मैं रागी, मैं जड़ का कर्ता''—ऐसे जो कुसंस्कार हैं, उन्हें निकाल दे, और ''मैं तो रागरहित चिदानन्दस्वभाव हूँ''—इस प्रकार अन्तरोन्मुख होकर अपनी पर्याय में स्वभाव के संस्कार डाल। वही सच्चे सुसंस्कार हैं। जिसप्रकार तीर में नोंक निकाली जाती है; उसी प्रकार आत्मा की पर्याय में नये संस्कार डाले जाते हैं; इसलिये हे जीव! तू आकुलित न हो; बहुत समय पुराने विपरीत संस्कार अब मैं कैसे दूर कर सकूँगा!—इस प्रकार हताश न हो, किन्तु मैं अपने स्वभाव की जागृति द्वारा अनादिकालीन विपरीत संस्कारों को एक क्षण में दूर करके अपूर्व संस्कार प्रगट कर सकता हूँ;—ऐसा मुझमें सामर्थ्य है;—इस प्रकार स्वभावसामर्थ्य की प्रतीति करके तू प्रसन्न हो।

यहाँ जो तीर का दृष्टान्त है, वह सिद्धान्त समझाने के लिये है। वह तीर तो जड़ है; इसलिये दृष्टान्त में निमित्त से ऐसा कहा है कि लुहार द्वारा उसकी नोंक बनाई जाती है; किन्तु सिद्धान्त में तो चैतन्यमूर्ति आत्मा स्वयं ही अपना लुहार है अर्थात् अपनी पर्याय की रचना करके स्वयं ही उसमें

संस्कार डालनेवाला है; कोई दूसरा आत्मा की पर्याय को बनानेवाला नहीं है—ऐसा समझना चाहिये। ''मैं पामर हूँ, परवस्तु के बिना मेरा एक क्षण भी नहीं चल सकता''—इस प्रकार सवसन्मुख होकर आत्मा स्वयं अपनी पर्याय में सीधे संस्कार डाल सकता है। आत्मा सीधा हो जाये तो अनन्त काल के पाप एक क्षण में पलट जाते हैं और धर्म के अपूर्व संस्कार प्रगट होते हैं; इसलिये अवस्था में आत्मा संस्कार को सार्थक करनेवाला है।

आत्मा कैसा है, उसका यह वर्णन हो रहा है। आत्मा में एक साथ अनन्त धर्म विद्यमान हैं। उसमें स्वभावनय से देखने पर आत्मा सदैव एकरूप है; उसके स्वभाव में कोई नये संस्कार नहीं पड़ते; किन्तु अस्वभावनय से देखने पर, आत्मा की अवस्था में प्रतिक्षण नये संस्कार होते हैं। पर्याय में अनादिकालीन विपरीत संस्कार हैं, उन्हें बदलकर स्वभाव की रुचि करने से सम्यग्दर्शनादि के नये संस्कार आते हैं; इसलिये पर्याय में पुरुषार्थ सार्थक हो सकता है। द्रव्यस्वभाव में तो कुछ फेरफार नहीं होता, किन्तु पर्याय में पुरुषार्थ द्वारा विपरीत संस्कार बदलकर सीधे संस्कार हो सकते हैं। ''चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो''—ऐसी स्वीकृति द्वारा पर्याय में शुद्ध संस्कार पड़ते हैं। एक समय की पर्याय का पाप त्रिकाल स्वभावी में तो नहीं है, और उस एक समय की पर्याय का पाप दूसरे समय की पर्याय में भी नहीं आता; इसलिये पहले समय पाप किया; इसलिये दूसरे समय में वह सुधर नहीं सकता—ऐसा नहीं है; दूसरी पर्याय में स्वयं जैसे संस्कार डाले, वैसे डल सकते हैं; अपनी प्रतिसमय की पर्याय की रचना स्वतंत्र है। संसार तो एक समयमात्र का है, किन्तु विपरीत संस्कार से उसे विस्तृतरूप दे दिया है; किन्तु यदि अन्तरस्वभाव की ओर उन्मुख हो तो स्वभाव के संस्कार पड़ें और संसार के संस्कार दूर हो जायें। त्रिकाली द्रव्य में संस्कार का प्रभाव नहीं है, किन्तु पर्याय में स्वयं जैसे संस्कार डाले, वैसे डलते हैं। भव्यस्वभाव बदलकर अभव्य नहीं होता; जीवस्वभाव बदलकर अजीव नहीं होता, किन्तु अज्ञान बदलकर सम्यग्ज्ञान होता है, संसार बदलकर मोक्ष होता है।—इस प्रकार पर्याय में संस्कार आते हैं।

पर्याय में विपरीत संस्कारों को बदलकर सीधे संस्कार हो सकते हैं; पुराने संस्कार दूर होकर नये संस्कार प्रगट हो सकते हैं। पर्याय के संस्कारों को बदला जा सकता है—ऐसा यहाँ कहा है; उससे ऐसा नहीं समझना चाहिये कि पर्याय के क्रम को बदलकर अन्यथा किया जा सकता है। जो क्रमबद्धपर्याय है, उसका क्रम तो कभी टूटता ही नहीं है; किन्तु क्रमबद्धपर्याय का यथार्थ निर्णय करनेवाले को ज्ञानस्वभाव की दृष्टि होने से पर्याय में नये वीतरागी संस्कारों का प्रारम्भ होता

है—वहाँ भी पर्याय का उस प्रकार का ही क्रम है। किन्तु पर्याय में पहले वैसी निर्मलता नहीं थी और अब ज्ञानस्वभाव की दृष्टि से निर्मलता प्रगट हुई, उस अपेक्षा से पर्याय के संस्कार बदले कहे जायेंगे, किन्तु पर्याय का क्रम नहीं बदला है।

एक जीव अनादि से निगोददशा में था, और निगोद से निकलकर मनुष्य होकर आठ वर्ष में उसने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया;—वहाँ उस जीव का द्रव्यस्वभाव तो ज्यों का त्यों एकरूप है; किन्तु उस स्वभाव के आश्रय से पर्याय में नये संस्कार पड़े हैं। द्रव्यस्वभाव तो ज्यों का त्यों ही है, किन्तु पर्याय में संस्कार बदल गये हैं। निगोददशा में वैसे संस्कार नहीं थे और केवलज्ञानदशा में वैसे अपूर्व संस्कार पड़े, तथापि द्रव्यस्वभाव ज्यों का त्यों है।

जिसके जैसे संस्कार हों, उसे वैसी ही झंकार सुनाई देती है। जिसके स्वभाव के सीधे संस्कार हों, उसे भन्कार भी स्वभाव की ही आती है; स्वप्न में भी उसे ऐसी झन्कार सुनाई देती है कि "मैं विमान में बैठकर सिद्धलोक में जा रहा हूँ; मेरे असंख्य प्रदेश इस देह से पृथक् हो गये हैं; मैं अल्पकाल में भगवान होऊँगा।" और जिसने स्वभाव की तीव्र विराधना करके महान विपरीत संस्कार डाले हों, उसे आभास भी वैसा ही होता है कि—"मैं मरकर तिर्यंचगति में जाऊँगा, मैं बन्दरी होऊँगा, मुझे कोई खींचे ले जा रहा है।"—इस प्रकार जैसे संस्कार डाले, वैसी झन्कार आती है। इसलिये हे भाई! अपनी पर्याय को अन्तरस्वभाव सन्मुख करके ऐसे संस्कार डाल कि "मैं परमात्मा हूँ; इस संसार को दूर करके अब मैं अल्पकाल में परमात्मा होनेवाला हूँ; अपनी पर्याय में स्वभाव के संस्कार डाले, इसलिये अब तुझमें विपरीत संस्कार रह ही नहीं सकते; अपनी पर्याय में मोक्ष के संस्कार डालने से अब संसार कहीं रहेगा ही नहीं।"—इस प्रकार पर्याय को अन्तरस्वभावोन्मुख करके जो आत्मा में स्वभाव के संस्कार प्रगट करे, उसे विचार और स्वप्न भी ऐसे अच्छे आते हैं कि मैं सन्त-मुनियों की टोली में बैठा हूँ, मैं भगवान हो गया हूँ, मेरा असंख्यप्रदेशी चैतन्यबिम्ब इस शरीर से पृथक् हो गया है .....इस प्रकार स्वभाव के भान से पर्याय में अपूर्व संस्कार प्रगट किये जा सकते हैं। शुद्ध स्वभाव को प्रतीति में लेकर पर्याय में उसके संस्कार डालने से जैसा शुद्धस्वभाव है, वैसी ही शुद्ध पर्याय हो जाती है। अनन्तकालीन विपरीत संस्कारों की कुलाँट मारकर सीधे अपूर्व संस्कार प्रगट करने में मात्र एक समय के स्वाश्रित पुरुषार्थ की आवश्यकता है। अरे! एक क्षण का भी असंख्यवाँ भाग!—एक बार ऐसा सम्यक्पुरुषार्थ करके पर्याय में शुद्धस्वभाव के संस्कार डालने से अनादिकालीन विपरीत संस्कार दूर होते हैं और अल्पकाल में ही मुक्ति होती है।

जिस प्रकार पुत्री को ससुराल भेजते समय माता-पिता उसे दहेज देते हैं; उसी प्रकार यहाँ आचार्य भगवान आत्मा को संस्कार से मोक्ष में भेजने के लिये उसे उसका दहेज बतलाते हैं कि—''देख भाई! तेरे आत्मा में अनंत धर्म एकसाथ विद्यमान है; अपने आत्मा के अनन्त धर्मों की ऋद्धि तुझमें भरी है; उसे जानकर तू प्रसन्न हो... प्रसन्न हो! शुद्ध चैतन्यद्रव्य में डुबकी लगाकर पर्याय में प्रमोद कर... आनन्दित हो... कि अहो! मेरी सम्पूर्ण चैतन्य ऋद्धि का सागर मुझमें भरा है; शांतरस का समुद्र मेरे आत्मा में उछल रहा है।

जिज्ञासु शिष्य ने पूछा था कि प्रभो! यह आत्मा कौन है? उसे आत्मस्वरूप स्पष्टरूप से समझाने के लिये यहाँ आचार्य-भगवान ने ४७ नयों से आत्मा का वर्णन किया है। उन ४७ नयों में सप्तभंगी (अस्तित्व-नास्तित्व आदि) के सात नय हैं; नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव—इन चार बोलों के चार नय हैं और द्रव्य-पर्याय, नित्य-अनित्य इत्यादि अठारह बोलों के छत्तीस नय हैं। इस प्रकार ४७ नयों से वर्णन करके अन्त में आचार्यदेव कहेंगे कि—स्याद्वाद के अनुसार किसी भी नय से देखो या प्रमाण से देखो, तथापि भीतर अनन्तधर्मवाला अपना आत्मा शुद्धचैतन्यमात्र दिखाई देता है। इसलिये ऐसे शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मस्वभाव को अन्तर्दृष्टि से देखना ही सर्वनयों का तात्पर्य है। क्योंकि नय जिस धर्म को विषय बनाते हैं, वह एक धर्म कहीं पृथक् नहीं रहता; वह धर्म तो धर्मी ऐसे अभेद आत्मा के आश्रय से ही विद्यमान है; इसलिये अखण्ड धर्मी ऐसा जो शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा है, उसे दृष्टि में लिये बिना उसके प्रत्येक धर्म का ज्ञान भी सच्चा नहीं होता, अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि के बिना एक भी नय सच्चा नहीं होता। इसलिये सर्व नयों के वर्णन में शुद्ध स्वभाव की दृष्टि तो साथ ही रखकर समझना चाहिये।

(—यहाँ २९ वें अस्वभावनय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।)

प्रभु! तूने आत्मा के भान बिना अनन्तबार चारों गति के अवतार धारण किये हैं, किन्तु भव और भव के कारण से रहित तेरा ज्ञानानन्दस्वभाव है, उस स्वभाव की दृष्टि कर तो भाव का अन्त आ जाये। इसके सिवा किसी भी बाह्यकारण से भव का अन्त नहीं आ सकता। इसलिये जिसे भव का अन्त लाना हो और आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट करना हो, उसे अन्तर के ध्रुव ज्ञानानन्द-स्वभाव को लक्ष में लेकर उसकी रुचि और बहुमान करने योग्य है; उसकी मुख्यता करके अवलम्बन लेने से धर्म होता है और भव-भ्रमण का अन्त आकर पूर्णानन्द मोक्षदशा प्रगट होती है।

महाकल्याणकारी सम्यग्दर्शन होने की रीति

[भूयत्थ मस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो]

(तीर्थधाम सोनगढ़ में मानस्तंभ-प्रतिष्ठा-महोत्सव प्रसंग पर,
वीर सं. २४७९ चैत्र शुक्ला ४ के प्रवचन से)

जिसे आत्मा का अपूर्व हित करना हो, उसे यह बात खास तौर से समझने योग्य है। दिगम्बर जैन धर्म कोई वाड़ा या सम्प्रदाय नहीं है किन्तु यथार्थ वस्तुस्थिति है। अनादिकाल से सर्वज्ञभगवान वह जानते आये हैं, तीर्थंकर दिव्यध्वनि से कहते आये हैं और गणधरसंत उसे झेलते आये हैं। जैनदर्शन क्या वस्तु है, वह अधिकांश लोगों ने सुनी भी नहीं है... सत्य बात का श्रवण भी आजकल लोगों को दुर्लभ हो गया है। अपूर्व कल्याणकारी सम्यग्दर्शन होने की यानी सच्चा जैन बनने की क्या रीति है?—वह इस प्रवचन में पूज्य गुरुदेव ने समझाया है।

शिष्य ने पूछा था कि—व्यवहारनय को परमार्थ का प्रतिपादक कहा है, तथापि वह अंगीकार करने योग्य क्यों नहीं है? उसका उत्तर चल रहा है। उसमें आचार्यदेव कहते हैं कि व्यवहारनय अभूतार्थ है, वह अशुद्ध आत्मा को बतलानेवाला है; उसके अवलम्बन से शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं होता, इसलिये जिन्हें धर्म करना है—ऐसे जीवों को वह जाननेयोग्य है तो भी व्यवहारनय आश्रय करनेयोग्य नहीं है किन्तु भूतार्थस्वभाव का ही आश्रय करनेयोग्य है; उस भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही शुद्ध आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यग्दर्शन की एक ही रीति

अनादिकाल से अज्ञानी जीव, राग से और व्यवहार के अवलम्बन से लाभ मान रहे हैं, व्यवहार का आश्रय तो वे अनादि से कर ही रहे हैं किन्तु उसके आश्रय से किंचित् कल्याण नहीं हुआ। कल्याण कहो या सम्यग्दर्शन कहो; वह अभेदस्वभाव के आश्रय से ही होता है। राग से किंचित् पृथक् होकर, अन्तर्मुख हो कर ज्ञानानन्दस्वभाव को ग्रहण करने से सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ शुभराग को व्यवहार कहा जाता है किन्तु राग करते-करते; उस राग के आश्रय से सम्यग्दर्शन हो जाये—ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

अनादिकालीन सनातन दिगम्बर जैनपंथ

अनादि से ऐसा एक ही प्रकार का सनातन दिगम्बर जैन पंथ चल रहा है, वही परम सत्य है। उसका विरोध करके कोई ऐसा कहे कि "पहले व्यवहार और फिर निश्चय"—तो वह जैनमार्ग को नहीं जानता। मोक्षमार्ग में पहले व्यवहार और फिर निश्चय यानी व्यवहार करते-करते निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हो जायेगा—ऐसा मानना तो व्यवहारमूढ़ता है। दिगम्बर सम्प्रदाय में रहकर भी जो ऐसा मानता है कि व्यवहार करते-करते उससे निश्चय प्रगट हो जायेगा; तो वह भी विपरीत मान्यता की पुष्टि करनेवाला मिथ्यादृष्टि है, उसे दिगम्बर मत की खबर नहीं है। दिगम्बर नाम धारण करके भी जो जीव, व्यवहार पर जोर देता है—व्यवहार के अवलम्बन से लाभ होना मानता है—वह जीव वास्तव में दिगम्बर सिद्धान्त को नहीं मानता; किन्तु उसका विरोधी है। दिगम्बर नाम धारण करके भी वह विपरीत मत की ही पुष्टि करता है।

जैनदर्शन यानी क्या ?

देखो, जिसे धर्म करना हो-आत्मा का अपूर्व हित करना हो, उसे यह बात खास तौर से समझने योग्य है। दिगम्बर जैनधर्म कोई वाड़ा या सम्प्रदाय नहीं है, किन्तु यथार्थ वस्तुस्थिति है। अनादि से सर्वज्ञभगवान उसे जानते आये हैं। तीर्थंकर दिव्यध्वनि से कहते आये हैं और गणधर संत उसे झेलते आये हैं। धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलंकदेव, अमृतचन्द्रादि आचार्य भगवन्तों ने यही बात कही है और वही यहाँ कही जाती है। यही जैनदर्शन है। आजकल तो अज्ञानी लोग जैनदर्शन के नाम से अनेक बातें करते हैं और लेख भी लिखते हैं किन्तु वे अधिकांश जैनदर्शन से विपरीत होते हैं। जैनदर्शन क्या वस्तु है-यह बात कई लोगों ने सुनी नहीं है। सच्ची बात का श्रवण भी आजकल लोगों को बड़ा दुर्लभ हो गया है। जो निमित्त के आश्रय से और राग से धर्म होना मनाते हैं, वे जैनदर्शन से विपरीत हैं; उन्हें जैनधर्म की खबर नहीं है। इसलिये वे वास्तव में जैन नहीं हैं।

जैन किसे कहें ?

जो आत्मा के शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव का विकार से भिन्नरूप अनुभव करते हैं, वे सम्यग्दृष्टि ही सच्चे जैन हैं। राग ही मैं हूँ, मुझे राग से धर्म होगा;—ऐसा मानकर जो अपने आत्मा का रागयुक्त-अशुद्ध ही अनुभव करते हैं और रागरहित भूतार्थ शुद्ध आत्मा को नहीं जानते, वे जीव व्यवहार में ही विमोहित मिथ्यादृष्टि हैं, उन्हें भगवान सचमुच जैन नहीं कहते।

जिसे समझने से हित हो ऐसा अपूर्व सत्य

निमित्त के कारण नैमित्तिक होता है–ऐसा माननेवाला भी पराधीन दृष्टिवाला मिथ्यादृष्टि है। अरे! अखण्ड आत्मा में ज्ञान–दर्शन–चारित्र के भेद करके अनुभव करे और उस भेद के आश्रय से लाभ माने तो उसे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता, वह भी व्यवहार में ही विमोहित है। भूतार्थस्वभाव में एकाकार दृष्टि करना ही सम्यग्दर्शन की रीति है; वही सत्य दृष्टि है, और वही कल्याण का मार्ग है। जो जीव ऐसी बात का श्रवण करने आया है, वह कुछ ऐसा अपूर्व सत्य समझना चाहता है—जिसके समझने से अपना हित हो, ऐसा सत्य समझना चाहता है। तो ऐसा कौन–सा सत्य है जिसे समझने से हित हो? वह यहाँ बतलाते हैं। त्रिकाली ज्ञानानन्द आत्मा ही सत्य भूतार्थ है; उस अभेदरूप आत्मा में अनादि गुणों के भेद करना भी अभूतार्थ है; राग भी अभूतार्थ है और निमित्तादि परवस्तुओं का तो आत्मा में अभाव ही है। एकाकार सहज ज्ञायकस्वभाव की सन्मुखता से निर्विकल्प अनुभव होता है, इसलिये वही भूतार्थ है, वही परमार्थ सत्य है। उसके सिवा भेद की, राग की या पर की सन्मुखता से तो राग की उत्पत्ति होती है, इसलिये वह अभूतार्थ है, उसके सन्मुख देखने से कल्याण नहीं होता।

किसके सन्मुख देखने से कल्याण होता है?

देखो, किसके सन्मुख देखने से कल्याण होता है, उसकी यह बात है। शुद्धनयरूपी आँख से आत्मा के भूतार्थस्वभाव को देखना ही सम्यग्दर्शन है। अभेद स्वभावरूप कारणपरमात्मा के सन्मुख एकाग्र होकर उसका अनुभव और प्रतीति करना ही कल्याण है। हे भाई! पर की ओर देखने से तो तेरा कल्याण नहीं हो सकता; और तेरे आत्मा में भी भेद की ओर देखने से तेरा कल्याण नहीं होगा। सम्पूर्ण आत्मा को एक समय में परिपूर्ण ज्यों का त्यों प्रतीति में लेना ही कल्याण का मूल है। "मैं ज्ञायक हूँ"—ऐसा विकल्प भी राग है; यहाँ उस विकल्प की बात नहीं है, किन्तु ज्ञान को अन्तरोनमुख करके विकल्परहित शुद्धनय से आत्मा के भूतार्थस्वभाव को लक्ष में लेकर उसके आनन्द का अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है।

आत्मा की सच्ची बुद्धि

भूतार्थदर्शी यानी सम्यग्दृष्टि अपनी स्वसन्मुख बुद्धि से डाले हुए शुद्धनयानुसार बोध होनेमात्र से उत्पन्न हुए आत्मधर्म के विवेकपने से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत (प्रगट) किये गये सहज एक ज्ञायकस्वभावरूप से आत्मा का अनुभव करते हैं। शुद्धनय से आत्मा के शुद्धस्वरूप का

बोध करना ही सच्ची बुद्धि है; उसी को यहाँ आत्मा की बुद्धि कहा है। परावलंबन से छूटकर और राग से पृथक् होकर जो ज्ञान, आत्मा के भूतार्थस्वभाव में ढला, उस ज्ञान को ही ''अपनी बुद्धि'' कहा है; अकेले पर की ओर के ज्ञानविकास को यहाँ ''अपनी बुद्धि'' नहीं कहते। सच्ची बुद्धि ही उसे कहते हैं कि जो अन्तर्मुख होकर अपने अखण्ड चिदानन्दस्वरूप को जान ले। क्षणिक विकार-स्वरूप ही सम्पूर्ण आत्मा को मान ले, तो वह बुद्धि नहीं है किन्तु मूढ़ता है।

भेदविज्ञान और सम्यग्दर्शन कैसे होता है ?

देखो, आत्मा और कर्म का भेदज्ञान कैसे होता है, वह यहाँ आचार्यदेव बतलाते हैं कि—अपनी बुद्धि द्वारा अन्तर्मुख होकर शुद्धनयानुसार आत्मा को जानने से आत्मा और कर्म का भेदज्ञान होता है और शुद्ध आत्मा का सम्यक्दर्शन होता है। जिस जीव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की तैयारी हो, उसे पहले देशनालब्धि में सम्यग्ज्ञानी का ही सीधा निमित्त होता है,—अज्ञानी के पास से या अकेले शास्त्र से देशनालब्धि नहीं होती। पात्र जीव को आत्मज्ञानी गुरु ही निमित्त होते हैं, तथापि उस निमित्त के कारण सम्यग्दर्शन हो जाता है—ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन तो अपनी स्वसन्मुख बुद्धि से और अपने पुरुषार्थ से ही होता है। इसलिये कहा है कि—अपनी बुद्धि से डाले हुए शुद्धनयानुसार बोध होने से आत्मा और कर्म का भेदज्ञान होता है; इसलिये यहाँ ज्ञान की दिशा को बदल देने की बात है। सम्यग्दर्शन पर निमित्त से तो नहीं, राग से नहीं और उस ओर उन्मुख बुद्धि से भी नहीं, किन्तु अंतर के शुद्धस्वभाव की ओर ढली हुई बुद्धि से ही होता है। अहो ! परलक्षी ज्ञान का विकास अधिक हो या कम हो, उसके साथ भी जब सम्यग्दर्शन का सम्बन्ध नहीं है, तो फिर राग की या निमित्त की तो बात ही कहाँ रही ?

चैतन्यभगवान की कहानी....

आत्मा का अपूर्व कल्याण करने के लिये यह बात समझने योग्य है। जिस प्रकार कथा-कहानी को समझना सरल मालूम होता है; उसी प्रकार यह भी चैतन्यभगवान आत्मा की कहानी ही है; इसलिये इसे समझने में रुचि और उत्साह आना चाहिए। पूर्व अनन्त काल में आत्मा को नहीं समझा है, इसलिये प्रारंभ में नया लगता है, किन्तु रुचि और उल्लास से समझना चाहे तो सब कुछ समझ में आ सकता है। मुझे अपने आत्मा का हित करना है—इस प्रकार जिसे अन्तर में उत्साह जागृत हो, उसकी बुद्धि आत्मज्ञान की ओर ढले बिना नहीं रहती।

पद्मपुराण

कोई कहता है कि इसकी अपेक्षा पद्मपुराण सरल मालूम होता है।—किन्तु भाई! यह भी आत्मा का पद्मपुराण ही पढ़ा जा रहा है। 'पद्म' अर्थात् राम; रामचन्द्रजी ने किस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया, उसका यह पुराण चल रहा है। रामचन्द्रजी भी अन्तर में अपने भूतार्थस्वभाव की दृष्टि से ही मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। यह आत्माराम अपने स्वभाव को भूलकर अनादिकाल से भववन में भटक रहा है; अब वह भवरूपी वनवास छोड़कर किस प्रकार अपने स्वभावगृह में वापिस आये, उसकी यह बात है। ''आत्मस्वरूप में रमण करे, वह राम''—आत्मा के शुद्ध स्वभाव को दृष्टि में लेकर उसमें रमणता करे, वह जीव रामचन्द्रजी की भाँति मुक्ति को प्राप्त होता है; और उसी का यह पुराण है।

चैतन्य की प्रीति और प्राप्ति

आत्मा चैतन्यस्वरूप है; उसकी सच्ची पहिचान या प्रीति जीव ने कभी नहीं की। यदि चैतन्यस्वरूप को समझ ले तो उसे समझानेवाले सच्चे देव-गुरु के प्रति भी प्रीति और उल्लास आये। वास्तव में जीव ने समझने के लक्ष से सत् निमित्तों के प्रति भी सच्ची प्रीति कभी नहीं की। जो शरीरादि को अपना मानता है, राग से धर्म मानता है, कुदेव-कुगुरु का आदर करता है—ऐसे मोही जीव को चिदानन्दस्वरूप आत्मा का प्रेम अनादि से नहीं आया, इसलिये उसे वह चिदानन्दस्वभाव अगम्य है। अज्ञानी को बाह्य का और राग का प्रेम है, इसलिये बाह्य से और राग से धर्म माननेवाले के प्रति भी उसे प्रीति है, किन्तु रागरहित भगवान आत्मा के चिदानन्दस्वभाव का प्रेम वह कभी नहीं करता, और वह स्वभाव समझानेवाले ज्ञानी को पहिचानकर उसके प्रति यथार्थ प्रेम कभी नहीं किया है, इसलिये अज्ञानी मोही जीव को चैतन्यस्वरूप आत्मा अगम्य है; चैतन्यस्वरूप आत्मा को

जाने बिना वह अनादिकाल से संसार में भटक रहा है। जिसे शुद्ध चिद्रूप आत्मा का प्रेम और पहिचान नहीं है, और उसके सिवा पुण्य की या पुण्य के फल की प्रीति है तथा उस पुण्य से धर्म माननेवाले के प्रति आदर है—ऐसे जीव को संसारपरिभ्रमण कभी नहीं मिटता। जिसे अपना आत्मा वास्तव में प्यारा लगा हो, वह जीव, राग से हित नहीं मानता—राग की प्रीति नहीं करता, और राग से धर्म मनानेवाले कुगुरु-कुदेव के प्रति उसे प्रीति नहीं आती। अहो! आत्मा चिदानन्दस्वरूप भगवान है—ऐसा बतलानेवाले वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र का आदर और प्रीति किये बिना, तथा उनसे विरुद्ध राग से धर्म कहनेवाले कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को साक्षात् आत्मघात का निमित्त जानकर छोड़े बिना जीव का कभी कल्याण नहीं होता।

यहाँ कहते हैं कि निर्मोही जीव को शुद्धचिद्रूप आत्मा की प्राप्ति सुगम है; यहाँ प्रथम दर्शन-मोह के नाशरूप निर्मोहीपने की बात है। निर्मोही दशा प्रगट करनेवाले को निमित्तरूप से भी निर्मोही देव-गुरु ही होते हैं। जिन्हें चैतन्यस्वरूप आत्मा का भान नहीं है और राग को ही स्वभाव मानते हैं, ऐसे जीव तो मोही हैं; निर्मोहदशा प्रगट करनेवाले को ऐसे मोही जीवों का सेवन नहीं होता। सत्समागम से सत्-असत् का निर्णय करके, अंतर में शुद्ध आत्मस्वरूप की प्रीति द्वारा जिसने मोह का नाश किया, ऐसे जीव को चैतन्यतत्त्व की शीघ्र प्राप्ति होती है। चैतन्य के भान बिना संसार परिभ्रमण में जितना काल व्यतीत हुआ, उतना काल संसार नाश करके मोक्षदशा प्रगट करने में नहीं लगता, इसलिये कहते हैं कि अंतर में चैतन्य की प्रीति करने से शीघ्र ही उसकी प्राप्ति होती है। चौथे गुणस्थान में गृहवास में रहनेवाले सम्यक्त्वी जीव भी निर्मोही हैं, उन्होंने अंतरश्रद्धा में शुद्ध चैतन्यतत्त्व को प्राप्त कर लिया है; और द्रव्यलिंगी दिगम्बर जैन साधु होकर पंचमहाव्रत पालते हैं, किन्तु उस महाव्रत के शुभविकल्प के आश्रित मोक्षमार्ग माने तो वह जीव मोही है, उसने चैतन्यतत्त्व को प्राप्त नहीं किया है किन्तु वह विकल्प में ही अटका है।

दुःख दूर करके सुख प्राप्त करने के लिये जीव अनंतकाल से मिथ्या प्रयत्न कर रहा है, किन्तु अन्तर के चैतन्यतत्त्व में सुख है, उसे चूककर वह बाह्य में सुख ढूँढ़ता है; इसलिये उसे सुख नहीं मिलता और वह संसार में ही भटकता है। चैतन्य का सुख बाह्य में मानना, वह मोह है और उस मोह से जीव दुःखी है। मेरा सुख मेरे अंतरस्वभाव में ही है; बाह्य में मेरा सुख नहीं है—ऐसा पहिचानकर आत्मस्वभाव की प्रीति करे तो ऐसे निर्मोही सम्यक्त्वी जीव को अपने आनन्दस्वरूप आत्मा की शीघ्र प्राप्ति होती है अर्थात् आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है।

अज्ञानी जीव, परवस्तु को अपनी मानता है और अनादि से उसे अपनी करने का प्रयत्न कर रहा है, किन्तु पर का एक रजकण भी कभी उसका नहीं हुआ; परवस्तु आत्मा से पृथक् है, उसे अपनी बनाना अशक्य है। अंतर में जो चैतन्यस्वरूप आत्मा है, वह अपनी वस्तु है; यदि उसकी प्रीति करके अंतर में उसकी प्राप्ति का उद्यम करे तो वह शीघ्र प्राप्त होता है—उसका अनुभव प्रगट होता है। शरीरादि परवस्तुयें आत्मा से भिन्न हैं, किन्तु शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा अपनी वस्तु है; अंतर्मुख होकर जब उसका अनुभव करना चाहे, तब हो सकता है।

(—वीर सं. २४८०, माघ शुक्ला ९; वडालग्राम में पूज्य गुरुदेव के प्रवचन से)

शुद्ध आत्मा का अनुभव हो सकता है

चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से देखने पर, रागादि अशुद्धभाव आत्मा में नहीं हैं, इसलिये उस स्वभाव की दृष्टि से रागादि भावों से रहित ऐसे शुद्ध आत्मा की अनुभूति होती है। शुद्ध स्वभाव की ऐसी दृष्टि करे, तभी से धर्म का प्रारम्भ होता है। शुद्ध स्वभाव की ऐसी अपूर्व दृष्टि गृहस्थाश्रम में भी हो सकती है। अरे! आठ वर्ष की बालिका हो, सिंह हो या मेंढक हो—वे भी अन्तर्मुख होकर ऐसी दृष्टि प्रगट कर सकते हैं। ऐसी दृष्टि प्रगट करके शुद्ध आत्मा का अनुभव किये बिना किसी जीव को धर्म का प्रारम्भ नहीं होता।

अपूर्व आत्महित का मार्ग

हे जीव! पूर्वकाल में तूने कभी अपने आत्मा को जानने की दरकार नहीं की; अब ज्ञानस्वरूप आत्मा को सत्समागम से पहिचानने का अवसर आया है; इसलिये अब अंतरंग प्रयत्न द्वारा आत्मा की ऐसी अपूर्व समझ प्रगट कर कि जिससे तेरे भवभ्रमण का अन्त आ जाये।

अनन्तकाल से संसार में भटकते हुए जीव का हित कैसे हो, उसकी यह बात है। आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरपूर है; वह स्वयं ही अपने अपूर्व हित का साधन है; किन्तु उसकी ओर न देखकर अज्ञानी जीव अनादि से बाह्य में अपने हित का साधन मानकर संसार में भटक रहा है। मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ; जगत से पृथक् हूँ; मुझमें जगत नहीं है और जगत के पदार्थों में मैं नहीं हूँ; मेरे सिर पर सांसारिक कार्यों का कोई भार नहीं है, मैं तो अनन्त गुणों से भरपूर अपनी चैतन्यनगरी का राजा हूँ—इस प्रकार अन्तर में निज स्वरूप को पहिचानकर उसकी शरण लेना, वह अपूर्व हित का मार्ग है।

मैं अनादि-अनन्त चिदानन्दस्वरूप आत्मा हूँ; राग मेरा मूलस्वरूप नहीं है और देहादि तो मुझसे बिलकुल भिन्न हैं;—इस प्रकार अन्तर में शुद्ध चिद्रूपतत्त्व की पहिचान करके सम्यग्ज्ञान करे, तो आत्मा का अपूर्व हित प्रगट हो और भव का अन्त आ जाये। आत्मा के यथार्थ ज्ञान बिना ही जीव को अभी तक संसार परिभ्रमण हुआ है। जीव ने अन्य सब कुछ अनन्त बार किया है किन्तु आत्मा का वास्तविक ज्ञान कभी नहीं किया। व्रत-तप और पूजा-भक्ति के शुभभाव अनन्तबार कर चुका है और उसके फल से स्वर्ग में भी अनन्तबार हो आया है, किन्तु मेरा स्वरूप इस राग से और संयोग से पार है—इस प्रकार अपने चैतन्यस्वरूप तत्त्व को अन्तर में कभी लक्षगत नहीं किया है। चैतन्यस्वरूप जितना ही मैं हूँ, संयोगों का मैं ज्ञाता हूँ किन्तु संयोग नहीं हूँ; राग का मैं ज्ञाता हूँ किन्तु राग मैं नहीं हूँ;—इस प्रकार भिन्न चैतन्यतत्त्व को लक्ष में लेना, वह अनन्तकाल में कभी नहीं की हुई ऐसी अपूर्व धर्म क्रिया है, और वह क्रिया मुक्ति का कारण है।

हे जीव! पूर्वकाल में तूने कभी अपने आत्मा को जानने की दरकार नहीं की; अब ज्ञानस्वरूप आत्मा को सत्समागम से पहिचानने का अवसर आया है; इसलिये अब अंतर के प्रयत्न द्वारा आत्मा की ऐसी अपूर्व समझ प्रगट कर कि जिससे तेरे भवभ्रमण का अंत आ जाये।

मैं चैतन्यस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा हूँ, इसके सिवा अन्य कुछ मेरा स्वरूप नहीं है; पुण्य-पाप और

संयोग का मैं ज्ञाता हूँ, किन्तु वे कोई मेरा स्वरूप नहीं हैं, मेरा स्वरूप तो ज्ञान ही है। विकार को जानने से मैं उस विकारस्वरूप नहीं हो जाता, किन्तु मैं तो ज्ञानरूप ही रहता हूँ। शुभ-अशुभ वृत्तियाँ तो पहले क्षण नवीन उत्पन्न होकर दूसरे क्षण बदल जाती है और संयोग भी बदल जाते हैं; वे कोई मेरे आत्मा के साथ स्थायी नहीं रहते, इसलिये वे कोई मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं हैं; मैं तो अनादि-अनन्त एकरूप चिदानन्दस्वरूप हूँ; मेरा स्वरूप कभी मुझसे पृथक् नहीं होता।—इस प्रकार अन्तर में शुद्ध चिदानन्द आत्मा के सम्यग्ज्ञान से ही धर्म का प्रारंभ होता है; इसके सिवा अन्य किसी उपाय से धर्म का प्रारंभ नहीं होता। इसलिये अपने चैतन्यतत्त्व की रुचि और उसका यथार्थ ज्ञान करना, वह अपूर्व हित का उपाय है। अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व का अनादर करके पुण्य-पाप की रुचि करना, वह तो चौरासी के अवतार की गहरी नींव है। अपने स्वभाव-सन्मुख होकर उसकी रुचि करना, वह संसार की नींव है। पुण्य अलग वस्तु है और धर्म अलग है; पुण्य तो परावलम्बन से होता है, पुण्य तो आस्रव-बंध का कारण है और धर्म संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण है; उसके बदले अज्ञानी लोग पुण्य और धर्म दोनों को एक ही वस्तु मानकर राग को धर्म मानते हैं;—उस विपरीत मान्यता में राग का आदर है और आत्मा के चिदानन्दस्वभाव का अनादर है; वही संसार का मूलकारण है। मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ और रागादिभाव मेरे स्वरूप से विपरीत हैं-पृथक् हैं, इस प्रकार रागरहित चिदानन्दस्वरूप को पहिचानकर उसका आदर करना, वह मोक्ष का कारण है।

[—वडालग्राम में पूज्य गुरुदेव के प्रवचन से वीर सं. २४८० माघ शुक्ला ९]

सोनगढ़ के जिनमंदिर को विशाल करने की घोषणा

परमपूज्य गुरुदेव के प्रभावनायोग से सोनगढ़ में आज से पंद्रह वर्ष पूर्व दि. जैन मंदिर का निर्माण हुआ था। उसके बाद गुरुदेव के प्रताप से दिन-प्रतिदिन धर्म प्रभावना में इतनी वृद्धि हुई कि धर्मस्थल एक के बाद एक संकुचित-से मालूम पड़ने लगे, प्रवचन के लिये स्वाध्याय मन्दिर भी कम मालूम पड़ते उससे चारगुना विशाल प्रवचन मंडप आज से आठ वर्ष पहले बनाया गया था, वैसे ही बहुत समय से भक्ति आदि के लिये जिनमन्दिर कम पड़ता था, इसलिये अनेक भक्तों की उसे भी विशाल बनाने की भावना थी। पू. गुरुदेव के जन्मोत्सव प्रसंग पर जिनमंदिर बढ़ा करने की घोषणा होने से सबको आनन्द हुआ और भक्तों की भावना सफल हुई। अभी का जिनमंदिर थोड़े समय में विशाल उन्नत और अत्यंत मनोहर स्वरूप में बदल जायगा। जिनमंदिर के लिये व पूज्य गुरुदेव के जन्मोत्सवनिमित्त निम्नलिखित रकमें घोषित की गईं—

२५०००	सेठ कालीदास राघवजी जसाणी	सोनगढ़
१००१	सेठ भूरालाल भुदरजी कोठारी	पोरबन्दर
१००१	सेठ भूरालालभाई की धर्मपत्नी कसुंबाबेन	पोरबन्दर
१००१	शाह जेठालाल मोतीचन्द	सोनगढ़
५०१	महेता वाघजी गुलाबचन्द ह. मोहनभाई	मोरबी
५०१	जासुदबेन छोटुभाई	पालनपुर
५०१	झीणीबेन हरजीवनदास	पोरबन्दर
३३०	देसाई मोहनलाल त्रीकमजी	भावनगर
२६४	झोबालीआ छोटालाल नारणदास	सोनगढ़
१९८	सेठ नानालाल कालीदास तथा उनकी धर्मपत्नी जड़वबेन	सोनगढ़
१३२	सेठ बेचरलाल कालीदास तथा उनकी धर्मपत्नी हरकोरबेन	सोनगढ़
१३२	सेठ मोहनलाल कालीदास तथा उनकी धर्मपत्नी शिवकुंवरबेन	सोनगढ़
१३२	कुंडला मुमुक्षुमंडल	सांवरकुंडला
१९८	काशीबेन पानाचंद	सोनगढ़

१०१	गोगीदेवी ब्रह्मचर्य-आश्रम की छात्रायें	सोनगढ़
६६६	सुशीलाबेन तथा सुलोचनाबेन (शांतिलाल गिरधरलाल की पुत्रियाँ)	सोनगढ़
६६	पू. बेनश्री चम्पाबेन	सोनगढ़
,,	पू. बेनश्री शांताबेन	सोनगढ़
,,	शाह जेठालाल मोतीचंद ह. हिंमतभाई	सोनगढ़
,,	मणिलाल जेचंदभाई खारा	अमरेली
,,	रामजीभाई माणेकचंद दोशी	सोनगढ़
,,	सुमनलाल रामजीभाई दोशी	मुंबई
,,	अनसुयाबेन नानालाल कालीदास	राजकोट
,,	शाह भगवानजी कचराभाई	नैरोबी
,,	झवेरचंद खेतशीभाई तथा उनकी धर्मपत्नी शांताबेन	,,
,,	शाह प्रेमचंद केशवजी	,,
,,	लीलीबेन उदाणी	राजकोट
,,	सेठ फूलचंद चतुरभाई	सुरेन्द्रनगर
,,	सेठ जगजीवन चतुरभाई	,,
,,	कान्ताबेन जगजीवन चतुरभाई	,,
,,	शारदाबेन जगजीवन (गोगीदेवी आश्रम)	सोनगढ़
,,	सुशीलाबेन जगजीवन (गोगीदेवी आश्रम)	,,
,,	धीरजलाल नाथालाल ह. मरघाबेन	राजकोट
,,	मोटाबेन-मगनलाल त्रिभुवनदास (आश्रम)	सोनगढ़
,,	मूलीबेन (गोगीदेवी आश्रम)	,,
,,	मासीबा (गोगीदेवी आश्रम)	,,
,,	रामजी रूपसी ढीचडाला	,,
,,	चंचलबेन अजमेरा (बरवालावाला)	,,
,,	समरतबेन तथा अचरतबेन खोडीदास	गोंडल

६६	केशवलाल गुलाबचंद	दहेगाम
''	चंदनबेन (केशवलाल गुलाबचंद)	''
''	एक मुमुक्षु बेन	सोनगढ़
''	शेठ जीवणलाल मुलजीभाई	सुरेन्द्रनगर
''	शाह गोपालदास त्रिकमजी	अहमदाबाद
''	शाह भीखालाल मगनलाल	दहेगाम
''	भीखालालभाई की धर्मपत्नी समरतबेन	दहेगाम
''	शाह मोहनलाल डोसाभाई	राजकोट
''	संघवी शिवलाल वरवाभाई	बढ़वाण शहर
''	महेता वाघजीभाई गुलाबचंद	मोरबी
''	सेठ लालजी वालजी	लाठी
''	मोहनलाल कानजीभाई घीया	राजकोट
''	जेकुंबरबेन मोहनलाल घीया	''
''	संघवी दलीचंद हकुभाई	मोरबी
''	केशवलाल कस्तूरचंद	भडकवा
''	जयाकुंवर लीलाधर पारेख	सोनगढ़
''	शाह फूलचंद डाह्याभाई	राजकोट
''	कानजी अदरजी	''
''	मलुकचंद छोटालाल झोबालीआ	अहमदाबाद
''	सेठ जेठालाल संघजीभाई	बोटाद
''	ज्योतिबाला ह. आणंदजी नागरदास	पालेज
''	सेठ कुंवरजी जादवजी	''
''	गंगाबेन (खुशालदास मोतीचंद)	उमराला
''	शाह धीरजलाल हरजीवन (फावाभाई)	''
''	शाह कालीदास गंभीर	''
''	सेठ नेमिदास खुशालदास	पोरबंदर

६६	कंचनबेन नेमिनदास	पोरबंदर
,,	हीराबेन मूलचंद	,,
,,	सेठ भुरालाल भूदरजी	,,
,,	भुरालालभाई की धर्मपत्नी कसुंबाबेन	,,
,,	हेमकुंवरबेन नरभेराम कामाणी	जमशेदपुर
,,	कामदार परसोत्तमदास शिवलाल	भावनगर
,,	परसोतम शिवलाल की धर्मपत्नी चम्पाबहेन	भावनगर
,,	सेठ अमृतलाल हंसराज	इंदौर
,,	सेठ कपूरचंद हीराचंद	सोनगढ़
,,	सेठ शिवलाल टपुभाई	राजकोट
,,	सेठ अमरचन्द गिरधरलाल	,,
,,	मास्टर हीराचन्द भाईचन्द	,,
,,	बेन ज्योतिबेन नानालाल	सोनगढ़
,,	शेठ सवाइलाल दलपतराम	राजकोट
,,	सेठ मुलजीभाई चत्रभुज	,,
,,	प्रभाकुंवरबेन पारेख	राजकोट
,,	मोदी हरगोविंददास देवचंद	सोनगढ़
,,	हरगोविंदभाई की धर्मपत्नी विजयाबेन	सोनगढ़
,,	कस्तूरबेन वेलजी	नैरोबी
,,	सविताबेन गुलाबचंद	नैरोबी
,,	कामदार छोटालाल मोहनलाल	अहमदाबाद
,,	चंचलबेन चत्रभुज चुडावाला	सोनगढ़
,,	वोरा मोहनलाल कीरचंद गोंडलवाला	अहमदाबाद
,,	कांताबेन अनोपचंद मूलजीभाई खारा	रांची
,,	शाह मगनलाल सुन्दरजी	राजकोट
,,	पारेख गलालचंद जेठाभाई	जामनगर

६६	कल्याणभाई लालभाई	अहमदाबाद
''	सेठ जगजीवन लखमीचंद	वढवाण शहर
''	सेठ रसिकलाल त्रंबकलाल	राजकोट
''	सेठ दामोदरभाई चत्रभुज	''
''	सेठ लक्ष्मीचंद लीलाधर	''
''	डॉ. चंदुलाल ताराचंद	''
''	शाह कान्तिलाल हरगोविंददास	सूरत
''	शाह छगनलाल उत्तमचन्द सरैया	''
''	ज्योतिबाला वृजलाल भायाणी	लाठी
''	शाह अंबालाल केशवलाल	दहेगाम
''	शाह छोटालाल पीतांबर	कपडवंज
''	शाह अमुलख लालचंद	जोरावरनगर
१००१	हेमकुंवरबेन नरभेदास कामाणी	रांची
१००१	सेठ मोहनलाल वाघजीभाई	सोनगढ़
१००१	मोहनलाल वाघजीभाई की धर्मपत्नी डाहीबेन	''
५०१	भाई चंदुलाल मोहनलाल	''
५०१	भाई चंदुलाल मोहनलाल की धर्मपत्नी	''
५९४	सेठ खीमचंद जेठालाल....	''
५००	शाह लखमीचंद केशवजी	नैरोबी
२०१	महेता नथुभाई परशोतम	जामनगर
१०१	एक मुमुक्षु भाई	सोनगढ़
१०१	शाह चीमनलाल वेलचंद	पालनपुर
१०१	शांताबेन गुलाबचंद टोलीया	सुरेन्द्रनगर
६६	मणिबेन नेमचंद	नैरोबी
''	शाह वाडीलाल जगजीवन	कलोल

६६	मंगुबेन तथा शांताबेन (वाडीलालभाई की धर्मपत्नी तथा पुत्रवधू)	कलोल
,,	सेठ मोहनलाल वाधजीभाई	सोनगढ़
,,	महेता गीरधरलाल भाईचंद ह. कांतिलाल	,,
,,	डॉ. नवरंगभाई मोदी की मातुश्री	,,
,,	सेठ खीमचन्द जेठालाल	,,
,,	सेठ चुनीलाल हठीसंग	,,
,,	उजमबेन चुनीलाल सेठ	,,
,,	चीमनलाल चुनीलाल हठीसंग	जामनगर
,,	चीमनभाई की धर्मपत्नी सुशीलाबेन	,,
,,	विजयकुमार चीमनलाल	,,
,,	सेठ वछराज गुलाबचन्द	गोंडल
,,	मणिबेन (वछराज गुलाबचन्द)	,,
,,	रेवाशंकर वछराज	,,
,,	लक्ष्मीकान्त वछराज	,,
,,	मास्टर जमनादास ताराचंद	अहदामबाद
,,	दीवालीबहेन मनसुखलाल गुलाबचंद	लीमडी
,,	शा. जयंतिलाल पानाचंद	व्यारा
,,	शा. मणिलाल पानाचंद	पालनपुर
,,	सेठ प्रेमचंद लक्ष्मीदास	बींछीया
,,	जसकुंबरबेन जमनादास	बंबई
,,	धीरजलाल भगवानजी	राजकोट
,,	शाह कांतिलाल हरिलाल	लीमडी
,,	गुलाबबेन	जामनगर
,,	विजयाबेन अमरचंद	भावनगर
,,	झबकबेन ध्रोलवाला	सोनगढ़

६६	मोतीबेन रायचंद	वोरसद
''	छोटालाल रायचंद खंधार	सोनगढ़
''	विमलाबेन कापडिया	सूरत
''	वोरा अमृतलाल देवकरण	सोनगढ़
''	कामदार गोपालजी लक्ष्मीचंद	गढडा
''	शाह शांतिलाल खीमचंद	भावनगर
''	कोठारी देवसी रामजी	सोनगढ़
''	पारेख प्रभुदास देवकरण	राजकोट
''	सेठ प्रेमचंद मगनलाल	राणपुर
''	मोतीबेन	जामनगर
''	बसंतलाल मोहनलाल जसाणी	सोनगढ़
''	निर्मलाबेन खुशालचंद	बंबई
''	समताबेन जीवनलाल	राणपुर
''	रतिलाल कस्तुरचंद	कलोल
''	वकील वीरजीभाई ताराचंद	जामनगर
''	रतिलाल लक्ष्मीचंद ह. चंदनबेन	भावनगर
''	दूधीबेन देवचंद मोदी	सोनगढ़
''	गिरजालक्ष्मीबेन (नागरदास देवचंद की धर्मपत्नी)	''
''	व्रजलाल नागरदास मोदी	''
''	रसिकलाल नागरदास मोदी	''
''	इन्दिराबेन नागरदास मोदी	''
८७५-६-०	विभिन्न व्यक्तियों की ओर से ६६ रुपये की रकमें (जटाशंकर माणेकचंद, नीमचंद देवशी, कुंकुमा, छबलबेन, चंपाबेन, सजनबेन, झवेरीबेन, प्रेमीबेन, मणीबेन, उजमसी भवान, जटुभाई वैद, हेमकुंवरबेन, पुरीबेन, जेठीबेन, धोलीबेन, धनलक्ष्मीबेन, शारदाबेन, रजनीकान्त, हेमकुंवरबेन, सांकलीबेन,	

चंचलबेन, सुहासबेन चंदुलाल, रतिलाल नागरदास, चीमनलाल, हिंमतलाल, हंसराज हरजीभाई, गोविंदराम डाह्याभाई, जयंतीलाल डाह्याभाई, पोपालाल जीवाभाई, वसंतलाल बृजलाल, नारणदास मोहनलाल, एक गृहस्थ, मोहनलाल बेचरदास, मणीबेन पीतांबर, चंपाबेन, लालजी देवजी, लाभकुंवर न्यालचंद, मीठालाल जगजीवन, कपूरचंद जैन, सूरजबेन अमृतलाल, कान्तिलाल नानालाल।)

४७०४७-६-०

सूचना – जेठ कृष्णा अष्टमी तक घोषित की गई रकमों की सूची यहाँ प्रसिद्ध हुई है। यदि घोषित की गई किसी की रकम सूची में न आने का संदेह हो तो अवश्य ही सूचित करने की कृपा करें।

मुद्रक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, अनेकान्त मुद्रणालय, वल्लभविद्यानगर
प्रकाशक : श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के लिये जमनादास माणेकचंद रवाणी